Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
ISSN: 2582-2004
Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

डॉ० अम्बेडकर और दलित समस्या

डॉ. अर्चना मिश्रा
असि0 प्रोफेसर (समाजशास्त्र विभाग) शिया पी0जी00 कॉलेज, लखनऊ

सामान्यतः दलित शब्द से तात्पर्य भारत में जनसंख्या के उस शोषित व पीड़ित वर्ग से है, जो परम्परागत आधार पर सदियों से सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अधिकारों से वंचित रहा है। दलित वर्ग में वे जातियां आती हैं जो अपवित्र होती हैं तथा जो रक्त और नातेदारी सम्बन्धों के आधार पर समाज में निम्न कार्यों को करती आ रही है। इनकी कई सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक निर्योग्यताएं थीं और प्रकारान्तर में आज भी हैं। इन्हें अच्छे कपड़े पहनने, अच्छे आभूषण धारण करने, उच्च स्थिति के परिचायक नामों को धारण करने, अच्छे मकान में रहने की छूट नहीं थी मन्दिर प्रवेश धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, सार्वजनिक कूओं, तालाबों, घाटों, पार्कोंकों के उपयोग की मनाही थी। स्कूलों में प्रवेश, सेना व पुलिस में भर्ती, नागरिक सेवाओं में भर्ती, उच्च व्यवसायों का चयन इनके लिए निषिद्ध था सामाजिक दृष्टि से ये अछूत के रूप में जन्म लेते थे, अछूत के रूप में जीते थे और अछूत के रूप में ही मरते थे। इतनी निर्योग्यताओं के मध्य दलितों का जीवन पशुओं से भी बदत्तर और गुलामों से भी निम्न था स्वाभाविक है कि परम्परागत सामाजिक आर्थिक समस्याएं तो इनके साथ जुड़ी ही थी बीसवीं शताब्दी में अनेक नवीन समस्याएँ भी जुड़ती चली गई। बेरोजगारी, अशिक्षा, अस्पृश्यता आवास, सामाजिक न्याय, पारिवारिक असन्तोष ऋणग्रस्तता, नशीले पदार्थों का सेवन से सम्बन्धित अनगिनत समस्याओं का भी इन वर्गों के साथ जुड़ाव होता गया। इन विभिन्न समस्याओं के साथ–साथ राष्ट्रीय स्तर पर देश की स्वतन्त्रता की भी एक प्रमुख समस्या थी। इसके लिए सभी देशवासियों में धर्म, जाति, अस्पृश्यता एवं ऊँच–नीच की भावना का परित्याग कर संगठित रूप में स्वतन्त्रता आन्दोलन चलाने की आवश्यकता थी। यद्यपि भारत की आजादी के लिए पूर्व में भी कई आन्दोलन एवं प्रयास हुए थे, किन्तु उनमें सामान्य नागरिकों की समर्पित भागीदारी

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

नहीं थी। इसका प्रमुख कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक भेद–भाव था वस्तुतः दलितों को देश का मूल नागरिक या और भी नजदीक से कहें तो मानव ही नहीं समझा जाता था। वर्णाश्रम धर्म एवं कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त के आधार पर इन्हें मौलिक मानव समाज से पृथक कर दिया गया था।

हिन्दू समाज ने वर्णाश्रम धर्म के द्वारा दलितों पर द्विजों का इतना निर्णायक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक वर्चस्व कायम कर दिया कि उसे दंड शक्ति की उतनी जरूरत ही नहीं रह गई। उल्लेखनीय है कि वर्णाश्रम व्यवस्था पुनर्जन्म और कर्मफल के तर्क पर आधारित है। इसके तर्कों के अनुसार पूर्व जन्म में किए गए कर्म के अनुसार ऊँची या नीची जातियों में जन्म होता है। यानी जाति स्वयं भगवान का करिश्मा है। दलितों के लिए निर्विकार भाव से सवर्णों की सेवा करना आवश्यक बना दिया गया। यही उनकी मुक्ति का मार्ग था। ऐसे में यह समझना कोई मुश्किल काम नहीं रह जाता कि यह मुक्ति का मार्ग था या गुलामी का इस व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि सवर्ण समाज को जहाँ बिना किसी पश्चाताप भाव के दलितों का शोषण करने का बहाना मिल गया, यहीं दलितों के लिए कोई शिकायत का मौका भी नहीं रह गया।

समाज में जब धर्म की सत्ता हो तो मुक्ति मोक्ष के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो सकती। हिंदू समाज में मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र उपाय था– जातीय कर्मों का निष्ठापूर्वक अनुपालन और चूंकि जातियाँ भिन्न–भिन्न थी अतः जातीय निष्ठाएँ भी भिन्न ही रहीं। जातीय आधार पर वर्ण का विभाजन इसी कर्म–सिद्धान्त का व्यावहारिक रूप था। ब्राह्मणों के लिए जहाँ पठन–पाठन (वेदो) का नियमन हुआ, वहीं शूद्रों के लिए उच्च वर्णों की निःस्वार्थ सेवा का शूद्रों की सेवा भी इस तन्मयता के साथ करनी थी कि सेवा करते समय किन्हीं कारणों से उनके मन में ईर्ष्याभाव का समावेश न हो। यह एक ऐसा नियम था, जिसके उल्लंघन की मनोवैज्ञानिक संभावना को किसी भी युग में नकारा नहीं जा सकता और नियम का उल्लंघन

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

हुआ नहीं कि शूद्रों के लिए मुक्ति का मार्ग बंद पवित्रता अपवित्रता की दुहरी जमीन पर संगठित हमारे समाज में दोहरे दंड–विधान का प्रावधान भी स्वाभाविक ही प्रतीत हुआ। समान अपराध के लिए समान सजा यदि लोकतंत्र की बुनियादी विशेषता है तो समान अपराध के लिए असमान सजा वर्ण–व्यवस्था की सहज दंड नीति थी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि असमानता हर समाज और हर में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है, तथापि जाति व्यवस्था से इतर किसी भी अन्य व्यवस्था में असमानता धार्मिक रूप से वैध नहीं मानी गई है।

जाति व्यवस्था की स्थापना और उसका कायम रहना तथाकथित उच्च जातियों के लिए फायदेमंद रहा है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या कारण है कि व्यक्तिगत सामाजिक सुधारों को छोड़ दिया जाए तो ऐसे बिरले ही उदाहरण मिलेंगे जहाँ उच्च जातियाँ जन आंदोलन का रूख अख्तियार कर जाति–व्यवस्था के विरोध में खड़ी हुई हों। नीच की संस्कृति किसी भी इंसान को सहज गवारा नहीं हो सकती। यही कारण है कि शस्त्र, शास्त्र और धनविहीन कर दिए जाने के बावजूद दलित जातियाँ शुरू से ही इस आरोपित नीच की संस्कृति का विरोध करती रही है. हाँ. यह अलग बात है कि विरोध के स्वर और तेवर भी बदलते रहे हैं। यह स्वाभाविक भी था। बदलते सामाजिक संदर्भों के अनुसार इस विरोध के स्वर में आरोह–अवरोह तो होना ही था। संस्कृतीकरण जहाँ इस विरोध की ओझल प्रक्रिया थी, वहीं दक्षिण भारत के अनेकानेक ब्राह्मणविरोधी आंदोलन इस विरोध के मुखर और परिपक्व स्वर थे। यह समझने के लिए किसी अतिरिक्त संवेदनशीलता की जरूरत नहीं है कि दलित जातियों ब्राह्मणवादी संस्कृति में पलते हुए अपना उद्धार नहीं कर सकती। अतः सम्पूर्ण मुक्ति के लिए इस व्यवस्था को ही बदलना होगा।

ब्राह्मणवादी व्यवस्था में दलितों की स्थिति विचित्र विडंबनात्मक है। वे हिंदू सामाजिक संरचना का अंग होते हुए भी नहीं है। हिंदुओं ने दलितों को अपने से अलग कर रखा है,

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

लेकिन यदि वे अलग होने की कोशिश करें तो यही हिंदू उन्हें अलग जाने की इजाजत नहीं देते। किसी को अछूत कहना न सिर्फ उस व्यक्ति का अपमान है बल्कि उसके अस्तित्व को नकार देना भी है। यह कहना गलत नहीं होगा कि दलित हिंदू संस्कृति के बंधुआ मजदूर हैं।

दलित समाज का शोषण धार्मिक कट्टरता से समय–समय पर उग्रतर होता रहा जबकि शोषित वर्ग ही धर्म में सच्ची आस्था रखता है। धर्म के पाखण्डों से शोषित दीन–हीन बनकर रह गया है। उसका देवालयों में प्रवेश निषेध इसलिए कर दिया गया जिससे उसे असलियत

का पता न चल जाय कि मन्दिरों में कुछ भी नहीं है तथा मन्दिर व ईश्वर के नाम पर हमेशा रोजी रोटी चलती रहे और दलित समाज हमेशा के लिए गुलाम बना रहे जैसा कि वर्तमान में बना हुआ है। समाज में व्याप्त कुपरम्पराओं के दूरगामी परिणामों को भांपकर राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, दयानन्द सरस्वती, भाई परमानन्द, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट, गाँधी तथा अम्बेडकर जैसे समाज सुधारकों ने समाज सुधार के लिए समाज को सचेत करते हुए मानवता का अर्थ समझाते हुए बताया कि धर्म मनुष्य को राहत दिलाने का रास्ता है ना कि मनुष्य को अज्ञान और उपेक्षित रखने का। इन्होंने मानव को मानव से दूर करने वाले आडम्बरों पर तीक्ष्ण प्रहार किये। समानता और भाईचारे की भावना को लेकर इन्होंने जनजागरण किया।

दलित समस्या एवं दलितों पर अत्याचार दोनों अवधारणाएँ क्रमशः एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। उन्नीसवीं शताब्दी तक और साधारणतया बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इनकी निम्न सामाजिक स्थिति के कारण इन्हें उनके अत्याचारों का सामना करना पड़ा है।

दलितों पर अत्याचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें ऐसे सभी प्रकार के दबाव शामिल किए जा सकते हैं जो दलितों को सामान्य अधिकारों के उपयोग से वंचित करते हैं। शास्त्रीय नियमों एवं सामाजिक प्रथाओं और परम्पराओं के द्वारा अनेक निषेध व निर्योग्यताएँ दलितों पर थोपी गई थीं। जिसे निर्यात या मजबूरी समझ कर दलितों ने भूतकाल में चाहे अनचाहे स्वीकार किया था। इस भेदभाव पर आधारित व्यवस्था का विरोध करने पर उनका उत्पीड़न

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

भूतकाल में कोई विशेष अर्थ नहीं रखता था। अनाधिकार आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास करने पर राम द्वारा शाम्बूक का वच और अक्षत्रिय शस्त्र प्रवीण एकलव्य से गुरु द्रोण द्वारा दक्षिणा स्वरूप अंगूठा मांगना तत्कालीन सामाजिक संदर्भ में अत्याचार अथवा अन्याय न निरूपित किया गया हो किन्तु, वर्तमान संदर्भ में स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना के उपरांत ये अथवा अन्य ऐसे कार्य जैसे एक महरिन से जबरदस्ती प्रसूतिगृह की सफाई कराना, चर्मकर्मी को उसकी इच्छा के विरूद्ध मरे मवेशी को उठाने के लिए बाध्य करना, एक दलित वर को विवाह के अवसर पर जबरदस्ती पालकी से उतारकर पैदल चलने के लिए मजबूर करना, किसी दलित को मत देने से रोकना अथवा विपक्षी को मत देने पर उसे प्रताड़ित करना आदि उनके प्रति न केवल सामाजिक अन्याय की द्योतक है बल्कि अत्याचार भी है।

इसका आशय सभी प्रकार के अन्याय, शोषण, पीड़ा एवं त्रास से है जो समाज में उच्च व शक्ति सम्पन्न वर्ग द्वारा परम्परात्मक रूप से निम्न व कमजोर वर्गों, जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ होते हैं, पर ढाए जाते हैं। इसमें निन्दा गाली, धमकी तथा सामाजिक बहिष्कार से लेकर बेगार कराना, सम्पत्ति से वेदखल करना, शासन द्वारा आवंटित भूमि पर कब्जा न देना तथा शारीरिक क्षति पहुँचाना जैसे मारना, पीटना, हत्या, बलात्कार तथा आगजनी एवं सम्पत्ति नष्ट करना आदि शामिल हैं। किन्तु विश्लेषण में सहूलियत की दृष्टि से सरकारी अभिलेखों में दलितों के विरूद्ध साधारण प्रकृति के अपराधों को अस्पृश्यता व अन्य अपराधों की श्रेणी में रखा जाता है। अत्याचार की श्रेणी में केवल हत्या, बलात्कार, आगजनी, दंगा तथा हिंसा जैसे गंभीर अपराधों को ही शामिल किया जाता है। यद्यपि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अत्याचार निवारण अधिनियम (1989) के लागू होने के साथ अब अस्पृश्यता व अन्य अधिकांश अपराध भी अत्याचार की श्रेणी में आ गये हैं।

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC) **ISSN:** 2582-2004
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

अत्याचार की प्रकृति बाध्यता मूलक होती है, चाहे उसका स्वरूप भेदभाव जनित हो, शोषण मूलक हो अथवा उत्पीड़नात्मक। इसमें दबे या खुले रूप से शक्ति प्रयोग किया अत्याचारी वर्ग समाज स्थिति अच्छी होती है, वह शक्ति सुविधा सम्पन्न स्थापित व्यवस्था में उसके हित निहित होते सामान्यतः अत्याचार शक्तिशाली वर्ग हितों चोट पहुँचाने वालों को दबाने के लिए किए जाते हैं। दबाव की मात्रा, प्रकृति समय, स्थान संदर्भ (अत्याचार पीड़ित व्यक्ति अथवा समूहों संख्या, स्थानीय पुलिस प्रशासन तत्परता कार्य क्षमता) अनुसार भिन्नता हो सकती प्रकार अत्याचार उच्च शक्ति सम्पन्न द्वारा समाज आर्थिक सामाजिक कमजोर वर्गों अपनी सुरक्षा करने अशक्त होते विरुद्ध किए अपराधों किया जाता है।

दलितों पर अत्याचार समस्या पिछले दशकों में गंभीर सामाजिक व्याधि में उभर कर आई समस्या की गंभीरता को देखते हुए हाल में केन्द्र राज्य सरकारों इसके नियंत्रण एवं निवारण हेतु समन्वित एवं त्वरित कदम उठाएँ किंतु स्थिति उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है।

विभिन्न अत्याचारों एवं समस्याओं से ग्रस्त होने पश्चात् भारतीय समाज ने भारत की स्वतंत्रता अपना योगदान किया इसका प्रमुख कारण रहा शताब्दी प्रारम्भिक चरण पश्चिमी नवजागरण प्रभावित समाज सुधारों प्रति प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का एक उबरने लगा था। लोगों देशभक्ति और राष्ट्रीय के विचार पनपने लगे थे। आर्थिक उपलब्धता और अनुकरण की प्रवृत्ति सम्पन्न दलित और ब्राह्मण मध्यम जातियों संस्कृतीकरण भर दिये। सन् 1857 प्रथम सिपाही विद्रोह सन् छोड़ो आन्दोलन तक उत्तर भारत और अछूतों ने भारत की स्वतंत्रता लिए सक्रिय लिया परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनके योगदानों का निरूपण नहीं किया गया। ए0आर0 ने लिखा है ब्रिटिश शासन विश्व कारण तथा भारतीय समाज निरपेक्षवादी मनोभावों परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। अंग्रेजों के के भारत सामाजिक संरचना कई अर्थों विश्व अन्य देशों अलग विभिन्न भाषाओं, उपजातियों बहुल जनसंख्याओं विभक्त था। बावजूद भी भारत आम नागरिकों द्वारा विभिन्न आन्दोलन चलाए सन् 1918 किसानों राजनैतिक

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
ISSN: 2582-2004
Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

चेतना जागृत हुई। सन् 1870 और 1897 बीच भारत पड़े। जिनमें सन् 1870, सन् 1896 और सन् 1897 अकाल सर्वाधिक विनाशकारी इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाज के कमजोर एवं दलित वर्गों से रहा. उन्नीसवीं शताब्दी के द्वारा बेदखली दिखाया तो पंजाब किसानों दिया। सन् 1902–03 में पंजाब में एलिएशन पास मुख्य करना था।

सन्दर्भ–सूची

1. अम्बेडकर बी० आर०. एनहिलेशन ऑफ थास्ट भीम पत्रिका, प्रकाशन
2. बीर, धनंजय अम्बेडकर लाइफ मिशन्स, पापुलर प्रकाशन बम्बई
3. सिंह रामगोपाल, भारतीय दलितः समस्याएँ एंव समाधान, मध्य प्रदेश
4. सिंह रामगोपाल, भारतीय दलितः समस्याएँ एंव समाधान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1998 पृ0 64
5. पंचरीक के०एल०, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन
6. पंचरीक के०एल०, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लोकेशन दिल्ली, 2008 पृ० 17
7. पंचरीक, के०एल०, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन
8. पंचरीक के०एल०, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन नई दिल्ली 2008 पृ0 17
9. सिंह, आर० जी०, भारतीय दलित समस्याएँ एंव समाधान
10. सिंह आर० जी०, भारतीय दलित समस्याएँ एंव समाधान
11. सिंह, आर० जी०, भारतीय दलित समस्याएँ एंव समाधान
12. देसाई, ए० आर०. भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि मैकमिलन क० इण्डिया लि0 1971, पृ० 4

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
ISSN: 2582-2004
Volume 03, Issue 02
DOI: 10.46523/jarssc.03.02.13
Multidisciplinary, Open Access

13. देसाई, ए० आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि मैकमिलन क० इण्डिया लि० 1971, पृ0 5

14- देसाई ए० आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि मैकमिलन क०, इण्डिया लि0 1971, 6

Received: 16.07.2020 **Accepted:** 18.08.2020 **Published**: 19.08.2020

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.